सुदृढ़ आधार का निर्माण

प्रतिबद्धता, उद्देश्य और विश्वास

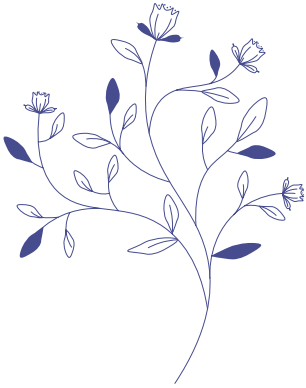

दाजी

योगाश्रम शाहजहाँपुर के
स्वर्ण जयंती समारोह के अवसर पर संदेश
बैच 2 – 16-18 फ़रवरी 2026

सुदृढ़ आधार का निर्माण

प्रतिबद्धता, उद्देश्य और विश्वास

प्रिय मित्रों,

पिछले कुछ दिनों से इस स्वर्ण जयंती के अवसर पर हम दो प्रश्नों पर मनन कर रहे हैं जो आध्यात्मिक जीवन से गहन रूप से सम्बन्धित हैं।

- 'विभाजित हृदय' में हमने इच्छा और आकांक्षा के बीच प्राचीनकाल से चले आ रहे संघर्ष के बारे में जाना। उसमें ऐसे साधक का वर्णन है, जो सत्य को जानता तो है लेकिन जब प्रतिबद्धता का क्षण आता है तब वह अपनी भावनाओं में बह जाता है और पीछे हट जाता है।

- 'उद्देश्य का जागरण' में हमने उस आत्मा की विचित्र जड़ता के बारे में जाना जिसके पास आवश्यक समस्त ऊर्जा तो है लेकिन उसने अपना उद्देश्य, गतिशील होने की अपनी प्रेरणा को खो दिया है।

लेकिन एक तीसरा शत्रु भी है जो न तो हृदय को विभाजित करता है न ही आंतरिक प्रेरणा को मंद करता है; वह उससे कहीं अधिक सूक्ष्मतर है। वह तब तक प्रतीक्षा करता है, जब तक हृदय प्रतिबद्ध होने का निर्णय न कर ले, जब तक ज्योति प्रज्वलित न हो जाए और साधना वास्तविक परिणाम न देने लगे। फिर वह धीरे से फुसफुसाता है, "क्या तुम निश्चित हो?"

वह शत्रु है संशय। सम्भवत: वह इन तीनों में सबसे खतरनाक है, क्योंकि वह उन पर आक्रमण नहीं करता जो असफल हो चुके हैं; वह उन पर आक्रमण करता

है जो सफल तो हो रहे हैं लेकिन अपनी ही प्रगति पर विश्वास करने का साहस नहीं जुटा पाते।

अपने अनुभव पर विश्वास न करना

हमारे एक प्रशिक्षक ने अपने केन्द्र की एक अभ्यासी बहन से सम्बन्धित एक परिस्थिति के विषय में मुझसे चर्चा की। उस बहन ने ग्यारह वर्षों तक ध्यान किया था – ग्यारह वर्षों की निरंतर साधना। ध्यान के फलस्वरूप प्रातःकाल जिस शांति को वह अपने हृदय में महसूस करती थी उसके विषय में बताती थी; उस धैर्य के विषय में बताती थी जिसने धीरे-धीरे उसकी पुरानी प्रतिक्रियाशीलता का स्थान ले लिया था; उस नवीन सामर्थ्य के विषय में बताती थी जिससे वह असुविधा के क्षणों में भी शांत बैठ सकती थी और अपने फोन की ओर नहीं लपकती थी।

इतना सब अनुभव करने के बावजूद वह यह भी कहती है, "क्या यह सब वास्तविक है, अथवा मैं स्वयं को ही भ्रमित कर रही हूँ?" यह तो वही बात हुई कि मानो कोई उपवन में खड़े होकर यह संशय करे कि क्या वास्तव में बसंत आ चुका है।

एक अन्य अभ्यासी तो शायद कहना चाहती थी, "बहनजी, यदि स्वयं को भ्रमित करना ग्यारह वर्षों की आंतरिक शांति दे सकता है, तो कृपया इस पर एक पुस्तक लिख दीजिए।" हममें से अधिकांश लोग तो अपने आप को चिंताओं के भ्रम में डालकर उसे यथार्थवाद का नाम दे देते हैं।

ज़रा इस पर विचार करें। यदि यह तथाकथित आत्म-भ्रम ग्यारह वर्षों की शांति प्रदान कर रहा है, तो क्या उस शांति पर थोड़ा अधिक विश्वास नहीं करना चाहिए? और फिर, हम अपनी चिंताओं पर उतनी सहजता से संशय क्यों नहीं करते, जबकि वे हमें अशांति के अलावा कुछ भी नहीं देतीं?

उस अभ्यासी बहन के पास सब कुछ था, सिवाय उस एक तत्त्व के जो उसकी साधना को सार्थक बना देता - अपने ही अनुभव पर विश्वास।

अब उसकी स्थिति को उन विचारों के परिप्रेक्ष्य में देखें जिन पर हम पहले ही चर्चा कर चुके हैं। उसका हृदय विभाजित नहीं था; उसने विवेकपूर्वक निर्णय लिया था और उसकी आंतरिक लौ भी प्रज्वलित थी। वह प्रतिदिन प्रातःकाल साधना करती थी। वह 'विभाजित हृदय' के उस पचास वर्षीय पुरुष की भाँति, जो आकांक्षा और इच्छा के बीच द्वंद्वग्रस्त था, किसी आंतरिक संघर्ष में उलझी हुई नहीं थी।

वह 'उद्देश्य का जागरण' की उस युवती के समान भी नहीं थी, जिसकी प्रेरणा लुप्त हो गई थी। उसके पास अनुशासन था, उद्देश्य था और साधना के सकारात्मक परिणाम भी थे।

फिर भी वह मानो जड़ होकर खड़ी थी, क्योंकि संशय ने भीतर घर कर लिया था। उसकी जड़ता अनुशासन या आकांक्षा के अभाव से उत्पन्न नहीं हुई थी बल्कि आत्म-संशय से उत्पन्न हुई थी। एक सूक्ष्म, मौन और भीतर से अस्थिर कर देने वाला संशय।

इसी कारण संशय को अपना अलग विचार-विमर्श चाहिए। जहाँ इच्छा संकल्प-शक्ति पर आघात करती है और आलस्य ऊर्जा को क्षीण करता है, वहीं संशय उससे भी अधिक मूलभूत तत्त्व पर प्रहार करता है — अपने ही रूपांतरण को पहचानने की क्षमता पर।

संशय का सूक्ष्म विष

संशय जिज्ञासा से भिन्न है। जिज्ञासा द्वार खोलती है जबकि संशय द्वार को पूर्णतया बंद कर देता है और फिर बाहर खड़े होकर वायु-संचार की शिकायत करता है। विवेक यानी सही और गलत में भेद करने की क्षमता जो प्रज्ञा की ओर ले जाती

विवेक यानी सही और गलत में भेद करने की क्षमता जो प्रज्ञा की ओर ले जाती है और संशय यानी क्षयकारी संशय जो समझ को विषाक्त कर देता है — सहज मार्ग इन दोनों के बीच अत्यंत सावधानी से भेद करता है।

है और संशय यानी क्षयकारी संशय जो समझ को विषाक्त कर देता है — सहज मार्ग इन दोनों के बीच अत्यंत सावधानी से भेद करता है।

रचनात्मक जिज्ञासा पूछती है, "क्या यह सत्य है?"

वह क्या, कैसे, कहाँ और क्यों के माध्यम से सत्य का अन्वेषण करती है।

क्षयकारी संशय पूछता है, "क्या मैं समर्थ हूँ?"

ऐसा संशय समझ को धूमिल कर देता है।

रचनात्मक जिज्ञासा स्पष्टता चाहती है जबकि क्षयकारी संशय पहचान पर ही सवाल उठाता है। जब आप अपनी ही पहचान पर सवाल उठाने लगते हैं तो समझो आप मूलत: आइने से बहस कर रहे होते हैं।

'विभाजित हृदय' में हमने अपने भीतर विद्यमान दो भेड़ियों के रूपक पर मनन किया था — एक जो हमारे उच्चतर स्वभाव का प्रतिनिधित्व करता है और दूसरा जो निम्नतर प्रवृत्तियों का। हमने समझा कि अंततः वही विजयी होता है, जिसे हम पोषित करते हैं।

संशय उन दोनों में से कोई नहीं है। संशय वह आवाज़ है जो कहती है कि उसे पोषित करना ही व्यर्थ है। वह संघर्ष से बाहर रहता है और धीमी आवाज़ में कहता है कि इसमें से कोई भी भेड़िया वास्तविक नहीं है, जो पोषण तुम उसे दे रहे हो वह काल्पनिक है; और यह आध्यात्मिक उन्नति का समस्त प्रयत्न मात्र एक कहानी है जिसे तुम स्वयं को सुनाते रहे हो। इसी कारण वह इच्छा या जड़ता से भी अधिक सूक्ष्म है। वह आकांक्षा से प्रत्यक्ष प्रतिस्पर्धा नहीं करता; वह उस आधारभूमि को ही कमज़ोर कर देता है, जिस पर आकांक्षा टिकी होती है।

एक अत्यंत सुंदर संवाद है, जो यह दर्शाता है कि संशय का क्षेत्र कितना सूक्ष्म और गहन हो सकता है। जब बाबूजी ने केंद्रीय क्षेत्र — आध्यात्मिक अनुभूति के

अत्यंत परिष्कृत आयाम में प्रवेश किया तब उन्हें उपलब्धि से जुड़े कोई भी संकेत नहीं मिले, जिनकी हम सामान्यतः अपेक्षा करते हैं - न आनंद का स्पंदन, न दिव्य दर्शन, न किसी प्रकार की आंतरिक दीप्ति। विशेष अनुभूतियों के अभ्यस्त मन को वह मानो पूर्ण शून्यता ही प्रतीत हुआ। उन्होंने लालाजी से अपने मन की बात कही, "मेरे पूर्व के दिन कहीं अधिक उत्तम थे। यह तो कुछ भी नहीं लगता।" लालाजी ने बड़ी सरलता से पूछा, "क्या मैं इस अवस्था को हटा दूँ?" तब बाबूजी तुरन्त बोल उठे, "नहीं, प्रभु! यदि आप ऐसा करेंगे तो यह मेरी अंतिम श्वास होगी।"

उस अवस्था में बाबूजी को न कोई सौंदर्य प्रतीत हुआ, न आकर्षण, न ही स्पष्ट रूप से महसूस होने वाला कोई सुख। फिर भी हम देखते हैं कि जिसने उस अवस्था का आस्वादन कर लिया, वह उसके बिना अस्तित्व में रह ही नहीं सकता। यही वह क्षेत्र है, जो संशय के अधिकार-क्षेत्र से परे है - ऐसी दशा जो अस्तित्व में इतनी रची-बसी होती है कि उसे हटा देने का अर्थ है अनस्तित्व। आत्मा जिस सत्य को प्रत्यक्ष जान लेती है, उसके विषय में वह तर्क-वितर्क नहीं करती।

यह ऐसा है, मानो अपने ही अस्तित्व के केंद्र में पूर्ण समता को खोज लिया हो। वह न तो जगमगाती है, न इंद्रियों को उत्तेजित करती है। लेकिन एक बार जब उस आंतरिक संतुलन की अनुभूति हो जाती है तब जीवन स्थिर और पूर्ण प्रतीत होता है। उसे हटाना उस समता को तोड़ देगा या झुका देगा और अंततः व्यक्ति आंतरिक रूप से अस्थिर हो जाएगा।

यह ऐसा है, मानो अपने ही अस्तित्व के केंद्र में पूर्ण समता को खोज लिया हो। वह न तो जगमगाती है, न इंद्रियों को उत्तेजित करती है। लेकिन एक बार जब उस आंतरिक संतुलन की अनुभूति हो जाती है तब जीवन स्थिर और पूर्ण प्रतीत होता है। उसे हटाना उस समता को तोड़ देगा या झुका देगा और अंततः व्यक्ति आंतरिक रूप से अस्थिर हो जाएगा।

आत्मविश्वास की संरचना

लैटिन शब्द con-fidare का अर्थ है—'विश्वास के साथ'। यह सफलता की गारंटी नहीं देता लेकिन यह उस गहन भरोसे का संकेत है कि जीवन में जो भी परिस्थिति आए, आप उसमें से अपना मार्ग खोज लेंगे।

संशय इस विश्वास को भंग कर देता है। लैटिन dubius शब्द का मूल अर्थ 'दो' है, जो द्वैत अथवा विभाजन की ओर संकेत करता है। जब मन कर्ता और आलोचक में विभक्त हो जाता है तब मानो आपने अपने भीतर एक ऐसे न्यायाधीश को नियुक्त कर लिया हो जो कभी शांत नहीं रहता।

संशय स्वयं को सत्य की खोज के रूप में प्रस्तुत करता है लेकिन जब संकोच के कारण कोई शंकास्पद कार्य असफल हो जाता है, तब वही संशय स्वयं को प्रमाणित करने लगता है, "देखा, मैंने पहले ही कहा था!" इस प्रकार संशय अपने ही दृष्टिकोण की पुष्टि करने वाले परिणामों को उत्पन्न करता है और उन्हें अपने प्रमाण के रूप में प्रस्तुत करता है। सत्य की खोज का दावा करने वाली इस वृत्ति की यह कपट भरी चाल है — एक ऐसा सूक्ष्म छल, जो स्वयं ही परिस्थिति रचकर उसे अपने पक्ष में प्रमाणित कर देता है।

'उद्देश्य का जागरण' में हमने चर्चा की थी कि किस प्रकार आलस्य ऊर्जा की कमी नहीं बल्कि लक्ष्यविहीन ऊर्जा है। संशय भी समानांतर मार्ग पर कार्य करता है। संशय अनुभव का अभाव नहीं है बल्कि वह विश्वाहीन अनुभव है। आलसी व्यक्ति के पास ईंधन तो होता है लेकिन अग्नि नहीं होती। संशयी व्यक्ति के पास ईंधन भी है और अग्नि भी, पर वह बार-बार यह जाँचने में लगा रहता है कि क्या यह अग्नि वास्तविक है—और इसी जाँच-पड़ताल में वह अग्नि ठंडी पड़ जाती है।

भगवद् गीता इस विषय में अत्यंत स्पष्ट है – वह हमें बताती है "संशयात्मा विनश्यति" अर्थात् संशय से ग्रस्त आत्मा नष्ट हो जाती है।

जो अपनी साधना पर संशय करता है, वह अपने मार्ग पर संशय करने लगता है।
जो अपने मार्ग पर संशय करता है, वह अपने मार्गदर्शक पर संशय करने लगता है।
और जो अपने मार्गदर्शक पर संशय करता है, वह मार्गदर्शन पर ही प्रश्नचिह्न लगा देता है।

प्रत्येक संशय ऐसा है मानो आप स्वेटर के एक-एक धागे को उधेड़ रहे हैं और फिर ठंड से कप-कपी होने पर आश्चर्य करते हैं। आप संरचना को थोड़ा-थोड़ा करके तोड़ते जाते हैं, जब तक कि अंत में कुछ भी शेष नहीं रह जाता।

अब प्रश्न उठता है, विनम्रता का क्या? क्या विनम्रता भी संशय ही है? नहीं।

विनम्रता कहती है, "मैं सब कुछ नहीं जानती।" संशय कहता है, "मैं पर्याप्त नहीं हूँ।" एक उन्नति के द्वार खोलता है और दूसरा उन्हें बंद करके चाबी ही निगल लेता है।

'विभाजित हृदय' वाले संदेश के सेतु वाले रूपक को याद करें। हमने इस विषय पर बात की थी कि बार-बार की असफलता संकल्प-शक्ति में सूक्ष्म दरारें उत्पन्न कर देती है। यह अदृश्य क्षति धीरे-धीरे बढ़ती जाती है, और जब तक कि कोई साधारण-सा अतिरिक्त भार भी बड़ी तबाही नहीं ला देता। संशय भी श्रद्धा के साथ यही करता है। हर बार जब किसी अनुभूति को नकार दिया जाता है, हर बार जब आंतरिक आवाज़ कहती है, "यह तो केवल कल्पना थी," तब विश्वास

प्रत्येक संशय ऐसा है मानो आप स्वेटर के एक-एक धागे को उधेड़ रहे हैं और फिर ठंड से कप-कपी होने पर आश्चर्य करते हैं। आप संरचना को थोड़ा-थोड़ा करके तोड़ते जाते हैं, जब तक कि अंत में कुछ भी शेष नहीं रह जाता।

की संरचना में एक सूक्ष्म दरार आ जाती है। बाहर से श्रद्धा अभी भी दृढ़ दिखाई दे सकती है लेकिन भीतर से वह क्षीण हो रही होती है। फिर एक दिन जिसे केवल हल्का-सा ढुलमुल होना चाहिए था वह आत्मविश्वास के पूर्ण पतन में परिणत हो जाता है। इसलिए नहीं कि साधना असफल हुई बल्कि इसलिए कि बार-बार के नकारने ने अंततः आधार को ही भंग कर दिया।

यही वह दरारों वाला आधार है — जो असफलता से नहीं बल्कि सफलता को नकारने के कारण भंग हो गया है।

साहस - संशय का मारक

यदि आप संशय से सीधे संघर्ष कर रहे हैं, तो आप उसके ही क्षेत्र में उसके साथ जूझ रहे हैं — उसकी अपनी भूमि पर। और अपनी भूमि पर संशय को पराजित करना अत्यंत कठिन है। जो मन संशय के साथ वाद-विवाद में उलझता है, वह पहले ही पराजित हो चुका होता है; क्योंकि संशय के पास तर्कों का अनंत भंडार है और किसी निष्कर्ष तक पहुँचने में उसकी तनिक भी रुचि नहीं होती।

अपने जीवन-रथ में संशय को एक स्थायी यात्री के रूप में देखिए। वह बोल सकता है; वह विस्तृत विपत्तियों का वर्णन भी कर सकता है। वह अलग-अलग सोलह प्रकार से यह भविष्यवाणी कर सकता है कि सब कुछ कैसे विपरीत दिशा में जाएगा लेकिन उसे कभी भी अपने जीवन का संचालन न करने दें।

अर्थात् संशय चेतावनी दे सकता है, संकेत कर सकता है या टिप्पणी कर सकता है लेकिन अपने जीवन का संचालन उसे सौंपना उचित नहीं।

'विभाजित हृदय' वाले संदेश में हमने देखा था कि इच्छा और आकांक्षा के बीच चलने वाला संघर्ष निम्न आकर्षण से प्रत्यक्ष संघर्ष करके नहीं जीता जाता बल्कि उच्चतर आकांक्षा को इतना प्रबल बनाकर जीता जाता है कि वह अन्य सभी प्रवृत्तियों को अपने में समाहित कर लेती है। यही सिद्धांत यहाँ भी लागू होता है। आप संशय को उससे बहस करके नहीं हरा सकते। आप उसे इतना

प्रत्यक्ष अनुभव संचित करके अप्रासंगिक बना देते हैं कि तर्क स्वयं ही निष्प्रभावी हो जाता है। जिसने शहद का स्वाद चख लिया है उसे यह सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं रहती कि मिठास का अस्तित्व है।

अतः संशय का मारक है — प्रत्यक्ष अनुभूति और साहस। साहस संशय को अस्तित्व में रहने देता है लेकिन उसे कार्य को रोकने का अधिकार नहीं देता। प्रत्यक्ष अनुभूति अंततः उसे पूर्णतः विलीन कर देती है।

दूसरी ओर श्रद्धा, संशय और निश्चितता, इन दोनों से भिन्न प्रकार से कार्य करती है। वह तर्क नहीं करती; वह केवल उस भूमि पर दृढ़ होकर खड़ी रहती है, जिस पर चलकर अनुभव किया गया है और कहती है, "यह सही है।"

प्रगति का निर्धारित पथ

आध्यात्मिकता अपने सार में उस सत्य का प्रत्यक्ष अनुभव करने की कला है, जिसे हम लम्बे समय से केवल मान्यताओं के रूप में धारण किए हुए हैं। हम इसका आरंभ दूसरों से लिए शब्दों से करते हैं, जैसे 'ईश्वर प्रेम है', या 'आत्मा अमर है। निश्चय ही, ये लुभावनी मान्यताएँ हैं लेकिन मान्यताएँ प्रतिज्ञात्मक नोट (promissory note) की तरह होती हैं। जब तक भुगतान राशि यानी परिणाम की प्राप्ति नहीं होती तब तक संशय फुसफुसाता रहता है, "क्या होगा यदि यह नोट बेकार हुआ?"

'उद्देश्य का जागरण' में, हमने देखा कि जब किसी तथाकथित आलसी व्यक्ति को किसी वस्तु में वास्तविक रुचि जाग्रत हो जाती है तब वह न तो थकता है, न

दूसरी ओर श्रद्धा, संशय और निश्चितता, इन दोनों से भिन्न प्रकार से कार्य करती है। वह तर्क नहीं करती; वह केवल उस भूमि पर दृढ़ होकर खड़ी रहती है, जिस पर चलकर अनुभव किया गया है और कहती है, "यह सही है।"

ही भोजन करता है और बिना किसी शिकायत के पूरी रात काम करता है। इससे पता चलता है कि उसमें काम करने की ऊर्जा हमेशा से थी लेकिन प्रेरणा अनुपस्थित थी। यहाँ एक समानता है। जब वास्तव में अनुभव होता है, जब ध्यान करने वाले व्यक्ति को अपने सीने में कुछ स्पष्ट अनुभूति होती है, तब ध्यान कारगर है या नहीं, इस बारे में मस्तिष्क की बहस निरर्थक हो जाती है। अनुभव तो हमेशा से हो रहा था लेकिन विश्वास का अभाव था।

मान्यता से अनुभव तक की यात्रा एक निश्चित क्रम का अनुसरण करती है। पहले, हम महसूस करते हैं। ध्यान के दौरान हृदय में कुछ हलचल होती है; ईश्वर के बारे में कोई विचार नहीं बल्कि उसके साथ एक प्रत्यक्ष अनुभूति । लेकिन वह एहसास अभी भी एक आगंतुक की तरह आता है और चला जाता है।

तो यात्रा जारी रहती है। हम जो अकसर महसूस करते हैं, हम वही बनने लगते हैं। वह धैर्य जो कभी केवल ध्यान के दौरान अंदर आया था, अब उसका एहसास प्रत्यक्ष रूप से ट्रैफ़िक सिग्नल पर भी होता है। वह शांतचित्तता जो कभी-कभी होती थी अब वह स्थाई बन जाती है, और अंतत: पूर्णतया व्याप्त रहती है। फिर कुछ गहन परिवर्तन होता है। हम अब धैर्य रखने का 'अभ्यास' नहीं करते, हम धैर्यवान बन जाते हैं।

विकास का सिलसिला सुबह होने से पहले लिए गए एक शांत निर्णय से आरंभ होता है - मैं ध्यान में बैठूँगा। इसलिए नहीं कि मेरा मन कर रहा है बल्कि इसलिए कि मेरे भीतर किसी ने यह तय कर लिया है और उस निर्णय पर मैं अडिग रहूँगा। संकल्प करना अभ्यास की ओर ले जाता है, फिर चाहे कुछ भी हो, कहीं भी हो, कभी भी हो और कैसे भी हो! अभ्यास अनुभव की ओर ले जाता है। अनुभव एक ऐसा विश्वास पैदा करता है जिसे कोई भी विवाद भंग नहीं कर सकता, क्योंकि यह विवाद से नहीं बना था बल्कि वह तो हृदय की अपनी गवाही से बना था।

हर शाम सफ़ाई के माध्यम से हम अपने भीतर के क्षेत्र को सरल बनाते जाते हैं। और यही वह अंतर्दृष्टि है जो सब कुछ बदल देती है - संशय को बने रहने के लिए एक जटिल कहानी की आवश्यकता होती है। अंदर के क्षेत्र को सहज बनाएँ

और संशय वहाँ पनप नहीं सकता। जैसे आग को जलने के लिए ईंधन की आवश्यकता होती है उसी प्रकार संशय को नाटकीय विचारों की आवश्यकता होती है। इन विचारों को हटा दें और तब इसके पास जलने के लिए कुछ नहीं बचेगा।

अब, 'विभाजित हृदय' के उस ककून और तितली की घटना को याद करें। वह व्यक्ति जिसने चीज़ों को आसान बनाने के लिए ककून को काट दिया था, उसके पास अब बस ऐसी तितली थी जिसके पंख सिकुड़े हुए थे और जो कभी उड़ नहीं सकती थी। संशय भी कुछ ऐसे ही हानि पहुँचाता है लेकिन विपरीत दिशा से। संघर्ष को समय से पहले समाप्त करने के बजाय, संशय तितली को बताता है कि उसके निकले हुए पंख असली नहीं हैं। जबकि संघर्ष के समाप्त होने पर पंख मज़बूत होते हैं और उड़ने की क्षमता भी पूरी तरह से विकसित हो चुकी होती है, लेकिन फिर भी संशय कहता है, "क्या तुम्हें यकीन है कि तुम उड़ सकती हो? शायद तुम्हें थोड़ी देर और ककून में रहना चाहिए। बस सुरक्षित रहने के लिए।" जो तितली इस आवाज़ को सुन लेती है, वह कभी नहीं उड़ेगी। इसलिए नहीं कि वह उड़ नहीं सकती, बल्कि इसलिए कि उसे यकीन दिलाया गया है कि उसके पंख काल्पनिक हैं।

मज़बूत आधार

अब हमारी अभ्यासी बहन की बात पर लौटते हैं जिसने ग्यारह वर्षों तक ध्यान किया। उसे विश्वास है कि उसने ऐसा किया है। फिर उसे कुछ महसूस हुआ - शांति, धैर्य, साम्यावस्था। उसने अनजाने ही पहला पड़ाव पार कर लिया। फिर उसके अनुभूत अनुभव उसके चरित्र को पुन: गढ़ने लगे। उसने दूसरा पड़ाव भी पार कर लिया, फिर भी वह वहीं खड़े रहकर, पूछती रही, "क्या यह सच है?"

संशय ने उसके रूपांतरण को नहीं रोका था, बल्कि कुछ और अधिक सूक्ष्म प्रभाव डाला था - इस संशय ने उसे रूपांतरण को पहचानने नहीं दिया। जो मन संशय करने का अभ्यस्त हो चुका है वह प्रत्येक अनुभव के आते ही उसे खारिज कर देगा - "वह तो बस तनावमुक्त हालत थी। वह तो बस कोरी कल्पना थी।"

यह नकारना क्या है इसे पहचानें – यह बुद्धिमत्ता नहीं, बल्कि डर का आवरण है जो निष्पक्षतावाद का दिखावा कर रहा है। उस बहन को और अधिक अनुभव की आवश्यकता नहीं थी बल्कि उसे अपने अनुभव पर विश्वास करने के लिए आत्म-विश्वास और साहस की आवश्यकता थी।

'विभाजित हृदय' में, हमने उन साधकों के बारे में बताया जो ऐसे वादे करते जाते हैं जिन्हें वे पूरा नहीं कर पाते, जो स्वतंत्रता के प्रति अपनी प्रतिबद्धता को अधिक आँकते हैं और प्रवृत्तियों से अपने लगाव को कम आँकते हैं। उस अभ्यासी बहन की समस्या इसके विपरीत थी। उसने अपने परिवर्तनों को कम आँका और अपने संशय की सत्ता को अधिक आँका। वह एक सफल साधक थी जो अपनी सफलता को नहीं देख पाई।

'विभाजित हृदय' अपनी प्रतिबद्धता पर संशय करता है। दबी हुई अग्नि अपनी ऊर्जा पर संशय करती है। दरारों वाली नींव अपनी मज़बूती पर संशय करती है। इन तीनों में से, अंतिम विष सबसे हानिकारक है क्योंकि नींव पहले से ही बनी हुई है। काम पहले ही हो चुका है। जो शेष रहता है वह है उस पर विश्वास करना।

वह आत्मविश्वास, जो साधक को इस पहचान तक ले जाता है, वह प्रारंभिक सहज आत्मविश्वास नहीं होता जिससे उसने यात्रा प्रारंभ की थी। जीवन उसे खंडित कर देता है और शायद ऐसा होना आवश्यक भी है। उसी विखंडन के अवशेषों से कुछ और गहन उदित होता है — एक शांत, अंतरनिहित अनुभूति; उस साधक का मौन ज्ञान, जिसने संशय किया, फिर भी साधना जारी रखी; जो केवल विश्वास करने से अनुभव करने तक और अनुभव करने से स्वयं उसी सत्य में परिणत होने तक पहुँचा — बिना किसी प्रशंसा या स्वीकृति की आवश्यकता के। बाद वाला आत्मविश्वास यह नहीं कहता कि अब आपको कभी संशय नहीं होगा बल्कि इसका मतलब है कि आप संशय को अपने जीवन पर हावी नहीं होने देते।

प्रत्येक प्रातःकालीन ध्यान आपको आपकी मान्यता से भी अधिक गहराई में ले जाता है। प्रत्येक शाम की सफ़ाई से ऐसी छापें और संस्कार दूर हो जाते हैं जो आपके नहीं हैं। साहस से किया गया हर काम संशय की ताकत को कमज़ोर

करता है। आप इस मार्ग पर चलते आ रहे हैं - आपकी प्रातःकालीन साधनाएँ इसकी साक्षी हैं और आपका धैर्य इसे दर्शाता है। आपका हृदय, जो वर्षों पहले की तुलना में अब अधिक शांत है, स्वयं इसका प्रमाण है। बस एक ही प्रश्न बाकी रहता है कि क्या आप उस सत्य पर विश्वास करेंगे जो आपके जीवन ने आपको पहले ही दिखा दिया है, या आपके बनने के द्वार पर खड़े होकर, हमेशा एक और प्रमाण की माँग करते रहेंगे।

सभी के लिए एक मारक

इन तीन संदेशों के माध्यम से हमने अपने अंतःप्रदेश का मानचित्र बनाया है —

'विभाजित हृदय' ने एक ऐसे हृदय को उजागर किया जो क्या चाहता है और क्या जानता है, उसके बीच फँसा हुआ था।
'उद्देश्य का जागरण' ने निरुद्देश्य ऊर्जा की निरर्थकता को स्पष्ट किया।
'सुदृढ़ आधार का निर्माण' अपने अनुभवों पर हमारे विश्वास को सुदृढ़ करता है क्योंकि यह संशय को उन अनुभवों को कम आँकने से रोकता है।

ये ऐसे तीन विष हैं जो हमारी यात्रा को रोक सकते हैं। फिर भी जब हम इन्हें एक साथ देखते हैं, तो एक ही भाव इन सबके भीतर प्रवाहित होता है।

प्रत्येक प्रातःकालीन ध्यान आपको आपकी मान्यता से भी अधिक गहराई में ले जाता है। प्रत्येक शाम की सफ़ाई से ऐसी छापें और संस्कार दूर हो जाते हैं जो आपके नहीं हैं। साहस से किया गया हर काम संशय की ताकत को कमज़ोर करता है। आप इस मार्ग पर चलते आ रहे हैं - आपकी प्रातःकालीन साधनाएँ इसकी साक्षी हैं और आपका धैर्य इसे दर्शाता है। आपका हृदय, जो वर्षों पहले की तुलना में अब अधिक शांत है, स्वयं इसका प्रमाण है।

हज़ारों साल पूर्व, अष्टावक्र ने एक ऐसी शिक्षा दी थी जो इतनी छोटी थी कि एक ही साँस में समा सकती थी - विषयान् विषवत् त्यज।" अर्थात् इंद्रिय -विषयों का त्याग उसी प्रकार करो, जैसे विष का त्याग करते हो। अष्टावक्र के लिए, विषय (इंद्रिय के विषय) विषस्वरूप थे - बाह्य जगत के आकर्षण, वे असंख्य प्रलोभन जो मन को चंचल करते हैं और आत्मा को सतही स्तरों से बाँधे रखते हैं।

बाबूजी ने अपनी अनुभूति की गहराई से बात करते हुए, इससे भी सूक्ष्मतर विष का पता लगाया - "संशय आध्यात्मिकता के लिए विष है।"

इस बात पर ध्यान दें कि ये दोनों चेतावनियाँ सदियों से किस तरह से एक-दूसरे की पूरक हैं। अष्टावक्र उस विष के बारे में सावधान करते हैं जो बाहर से भीतर प्रवेश करता है - यह संसार आपको स्वयं से दूर खींचता है। बाबूजी उस भीतर से पैदा होने वाले उस विष से सावधान करते हैं - आपका मन आप ही के अनुभव को नकार देता है। पहला विष ऐसे साधक की मति भ्रष्ट कर देता है जो परिपूर्णता की खोज बाहर करता है। दूसरा विष ऐसे साधक को पथ-भ्रमित कर देता है जो पहले ही भीतर की ओर मुड़ चुका है लेकिन वहाँ जो मिला है उस पर विश्वास करने से इनकार करता है। दोनों मिलकर आध्यात्मिक संकट के समस्त प्रदेश का मानचित्र बना देते हैं। बाह्य विष कहता है, "कहीं और देखो।" वहीं आंतरिक विष कहता है, "जो तुमने पाया है, वह पर्याप्त नहीं है।"

अब इन दोनों के बीच के उस विष का क्या, उस भारीपन का क्या जो उद्देश्य के झीण होने पर जमा हो जाता है? वह भी ढका होता है। सांसारिक विषय हमारे ध्यान को बाहर की ओर मोड़ देते हैं। संशय विश्वास को भीतर से खत्म कर देता है। और उद्देश्यहीनता, यानी वह तमस जिसके बारे में हमने 'उद्देश्य का जागरण' में बात की थी, उस रिक्तता को भर देता है जो तब उत्पन्न होती है जब बाह्य आकर्षण भी खो जाता है और आंतरिक विश्वास भी।

तीन विष - भटकाव, आलस्य और संशय। बाहरी, बीच का और भीतर का।

तीन मारक – प्रतिबद्धता, उद्देश्य और विश्वास। बाहरी, बीच का और भीतर का।

तीन विष

तीन मारक

प्राचीन ज्ञान कहता है - हिम्मत-ए-मर्दा तो मदद-ए-ख़ुदा। इसका मतलब है कि जब हम एक कदम उठाने की हिम्मत करते हैं तब ईश्वर शेष दूरी को पाट देता हैं।

विभाजित हृदय को चयन करने के लिए साहस की आवश्यकता होती है।
दबी हुई अग्नि को भड़कने की आवश्यकता होती है।
दरार वाली नींव को विश्वास करने के साहस की आवश्यकता होती है।

प्रत्येक मामले में, जिस क्षण हम उस साहस को जुटा लेते हैं तब बीच राह में हमें कुछ सशक्त भाव की अनुभूति होती है यानी हमें ईश्वर की मदद प्राप्त होती है। इन तीनों विषों का एक ही मारक है – श्रद्धा और साहस का एक साथ काम करना।

प्रेम और प्रार्थनाओं सहित,
कमलेश

दाजी के साथ मास्टरक्लास

आप किसी भी समय हार्टफुलनेस ध्यान का आरम्भ कर सकते हैं। दाजी के साथ तीन सत्रों की मास्टरक्लास श्रृंखला से जुड़ें जिसमें वे हार्टफुलनेस मार्ग के लाभ को साझा करते हैं और यह स्पष्ट करते हैं कि हार्टफुलनेस रिलैक्सेशन, ध्यान, सफ़ाई और प्रार्थना को अपनी दिनचर्या में कैसे समाहित किया जाए। सभी मास्टरक्लास पूर्णतः निःशुल्क हैं।

https://heartfulness.org/global/masterclass/

हार्टफुलनेस अभ्यास

हार्टफुलनेस के अभ्यासों को जानें – रिलैक्सेशन, ध्यान, सफ़ाई और प्रार्थना करना सीखें।

https://heartfulness.org/in-en/heartfulness-practices/

heartfulness

purity weaves destiny